शान्तिलाल जारोली

कषाय समीक्षण

युग पुरुष, समता विभूति, समीक्षण ध्यान योगी स्वर्गीय आचार्य श्री नानेश ने अपनी अनुभूतियों के आधार पर कहा कि कर्म बंध का मुख्य कारण है राग द्वेष। राग द्वेष रूपी वृत्तियों का संशोधन करने के लिए कषायों की समीक्षा जरूरी है। आज वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि वृत्तियों का उद्‌गम स्थल अन्त:स्रावी ग्रन्थि तंत्र है। जैसा अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का स्राव होता है वैसा भाव। जैसा भाव – वैसा स्वभाव। स्वभाव को परिष्कृत करने के लिए मनोवृत्तियों एवं कषायों का समीक्षण करना नितान्त आवश्यक है। कषाय की वृत्तियों के कारण ही व्यक्ति कई प्रकार के पाप कर लेता है जैसे हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, परिग्रह आदि। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि 'कषाय अग्गिणों वृता सुमशील तवो जल' कषाय को अग्नि कहा है उसे बुझाने के लिए श्रुत, शील और तप, यह जल है।

कषाय के लिये कहा 'कष्यति इति कषाय' अर्थात् जो आत्मा को हर पल कलुषित करे, उन्हें कषाय कहते हैं। कषाय चार प्रकार से पैदा होते है :–

१. आत्म प्रतिष्ठित (अपनी भूल से होने वाले)
२. परभव प्रतिष्ठित (दूसरों के निमित्त से होने वाले)
३. तदुभव प्रतिष्ठित (अपनी व दूसरों के निमित्त या दोनों के निमित्त)
४. अप्रतिष्ठित (बिना निमित्त होने वाले)

कषाय चार प्रकार के है **क्रोध, मान, माया और लोभ।** इनके सोलह भेद बताए गए है, जो निम्न प्रकार है :

क्र. कषाय	अनंतानुबंधी	अप्रत्याख्यानी	प्रत्याख्यानी	संज्ज्वलन
१. क्रोध	पर्वत की दरारवत्	सूखे तालाब की तराड़वत	बालू रेत की लकीरवत	पानी की लकीरवत
१. मान	पत्थर के स्तंभवत	हड्डी के स्तंभवत	लकड़ी के स्तंभवत	तृण के स्तंभवत
३. माया	बांस की जड़वत	मेढ़े की सींगवत	गौमूत्रिकावत	बांस के छिलकेवत
४. लोभ	किरमची रंगवत	गाड़ी के पहिये के कीट के समान	काजलवत	हल्दी के रंग के समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतानुबंधी कषाय से नर्क, अप्रत्याख्यानी से तिर्यंच, प्रत्याख्यानी से मनुष्य तथा संज्ज्वलन कषाय से देवगति का बंध हो होता है।

कषायों पर नियंत्रण – समीक्षण ध्यान साधना द्वारा प्रत्येक कषाय पर नियंत्रण कर सकते हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ के कषायों पर नियंत्रण निम्न प्रकार से किया जा सकता है –

क्रोध – क्रोध की वृत्ति प्रमुख कषाय है जो प्रत्येक मनुष्य में कम अथवा ज्यादा अवश्य पाया जाता है। क्रोध एक ज्वालामुखी है जो अनंत-अनंत जन्मों तक विस्फोट के रूप में अभिव्यक्त होता है। जैन आगमों में कहा गया है **'कुद्धो.... सच्चं सीलं विणयं हणेज्ज'** अर्थात् क्रोधान्ध **व्यक्ति सत्य,** शील और विनय का विनाश कर डालता है।

मनोविज्ञान के अनुसार क्रोध एक प्रकार का संक्रामक कीटाणु है जो अपने को ही नहीं आस-पास के वातावरण को भी रूग्ण कर देता है। शरीर स्वास्थ्य की भाषा में अंतस्रावी ग्रंथियों के स्रावों का असंतुलन क्रोध को जन्म देता है। क्रोध आने का जो केन्द्र है वह है हमारा मस्तिष्क। सारी प्रवृतियों का संचालन मस्तिष्क के द्वारा होता है। अच्छी या बुरी सारी भावधारा मस्तिष्क में पैदा हो रही है, क्रोध करना यह भाव भी मस्तिष्क से आ रहा है। दूसरें शब्दों में क्रोध का उद्दीपन भी होता है और नियमन भी होता है।

क्रोध का कारण : इच्छा के विरुद्ध कार्य होना, स्वार्थ की पूर्ति न होना, शरीर में पित्त कफ की प्रधानता, मांसाहार भोजन, मानसिक असंतुलन, सहिष्णुता का अभाव, आग्रह का आधिक्य, एड्रिनल की अधिकता, प्रतिकूल परिस्थितियां आदि। व्यक्ति क्रोध करके दूसरों का नुकसान करे या न करे लेकिन स्वयं का कितना बड़ा नुकसान वह कर लेता है यह पता लगता है जब स्वयं के द्वारा किये गये क्रोध के दुष्परिणाम को अक्रोध की अवस्था में, क्रोध शांत होने पर देखता है। क्रोधी व्यक्ति स्वयं जलता है और आसपास के क्षेत्र को जलाकर राख कर देता है।

क्रोध से हानियां –

१. **शारीरिक** – श्वास तीव्र, पेप्टीक अल्सर, हृदय रोग, उच्च रक्त चाप, सिर दर्द, माइग्रेन दर्द, कोलस्ट्राल बढ़ जाना, पाचन तंत्र मंद, नाड़ी व ग्रंथि तंत्र का असंतुलन।

२. **मानसिक** – मन अशांत, मन की चंचलता बढ़ जाना, मानसिक शक्तियों का, स्मृति, कल्पना, चिन्तन आदि का ह्रास।

३. **भावनात्मक एवं आध्यात्मिक** – निषेधात्मक भाव, सृजनात्मक क्षमता में कमी तथा अशुभ कर्मों का बंधन, चैतनिक विकास का रुक जाना तथा आत्मिक शक्ति का कमजोर होना।

क्रोध मुक्ति का एक साधन है – समीक्षण ध्यान साधना। समीक्षण ध्यान एक रूपान्तरण की प्रक्रिया है जिससे मस्तिष्क में जब अल्फा तरंग का अनुभव होता है तब व्यक्ति का मन संतुलित हो जाता है। क्रोध की तीव्रता को नियंत्रित करने के लिए मन की मनोवृत्तियों का समीक्षण बड़ा उपयोगी है। साधक चिंतन करें कि क्रोध क्यों उत्पन्न होता है? क्रोध की अवस्था में क्या क्षतियां होती है अत: समीक्षण विधि से क्रोध का विश्लेषण करते रहना चाहिए। समीक्षण ध्यान एवं समतामय आचरण के बल पर साधक अपनी साधना के अनुरूप क्रोध के दृष्टा के रुप में 'कोह दंसी' होगा। जब क्रोध को देखने की क्षमता जागृत हो जायेगी तब वह क्रोध रूप कार्य की जो समर्थ कारण सामग्री होती है उसका भी समीक्षण कर लेगा।

मान – क्रोध समीक्षण की पहली सीढ़ी पर जब साधक का पांव जम जाय तब वह दूसरी सीढ़ी पर उतरने का उपक्रम करेगा। जब क्रोध समीक्षण की सम्पूर्ति होती है तब मान समीक्षण का पूर्व प्रारम्भिक क्षण यही **'जे कोहो दंसी से माण दंसी'** की सूक्ति का साधना-पथ है।

मान आत्मा की विकृत वृति है। सहज स्वाभाविक चैतन्य वृति को विभाव रूप विकृत बनाने वाले कर्म स्कन्ध जब अहंकार के रूप में परिणत होते हैं तब कर्म स्कन्धों को मान संज्ञा से अभिहित किया जाता है। मान आत्मा के स्वाभाविक गुण नम्रता को कुण्ठित कर देता है। सत्तागत मान के स्कन्ध उदयगत होते हैं, उस समय उनका प्रभाव मन को प्रभावित करता है। बाहर कोई आधार न मिलने पर पुरुष अपने आप को अभिमानी की अवस्था में अनुभव करता है। इसमें अपने आपको अधिक मान लेने के कारण आगे के विकास का द्वार अवरुद्ध हो जाता है। ऐसी वृति के बनने पर मानस-तंत्र से भी वृतियां जो विकासोन्मुख थीं, वे ह्रासोन्मुख हो जाती हैं जिससे जीवन पर घातक असर होता है। मान-वृति एक मीठा जहर है क्योंकि यह हमारे शरीर और आत्मा को कलुषित करता है तथा हमें पता भी नहीं चलता क्योंकि मान को अक्सर स्वाभिमान का चोला पहनाकर रखते हैं। कहा है क्रोध बिच्छू के डंक के समान है तो मान सांप के काटने के समान ज्यादा खतरनाक है।

अहंकार के प्रकार – अहंकार अनेक प्रकार का होता है जैसे रूपमद, जातिमद, कुलमद, ऐश्वर्यमद, बलमद, पद का मद, प्रतिष्ठा का मद और यहां तक कि ज्ञानियों को ज्ञान का और तपस्वियों को तप का भी मद हो जाता है। अत: समीक्षण ध्यान-साधना द्वारा का इन मदों से बचना चाहिए।

समीक्षण दृष्टि ऐसी आंतरिक दृष्टि है कि जिससे बाहरी तत्वों के अवलोकन के साथ-साथ आंतरिक तत्वों का भी अवलोकन हो रहा है। भीतर के भी अन्य तत्वों के अतिरिक्त आत्मा का स्वाभाविक विकास, वैभाविक गुण जो अभिमान की संज्ञा से अभिहित किया जाता है, भलीभांति दीखने लगता है साथ ही इनसे होने वाले आध्यात्मिक और मानसिक दुसाध्य रोग भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदित हो जाते हैं पर यह सभी संभव है जबकि विशिष्ट दृष्टि का सत्कार सम्मानपूर्वक जिज्ञासापूर्वक श्रद्धान्वित होकर दीर्घ दिन तक, अनवरत अभ्यास किया जाए। इस तरह मान पर नियंत्रण संभव हो सकता है।

माया – माया आंतरिक जीवन का कुटील रूप है जो चेतना को छलना के जाल में आबद्ध करता रहता है। माया या छल कपट जिसकी वास्तविक सत्ता न हो किन्तु प्रतीति होती हो उसी को माया कहते हैं। मोह अथवा भ्रम की उत्पति माया का कार्य है। माया एक आभास है, माया परमात्मा को भ्रांति उत्पन्न करने वाली एक शक्ति है। मन और इन्द्रियां इसके रूप हैं। माया की शक्ति से ही जगत वास्तविक प्रतीत होता है। असंभव को संभव करना माया का विचित्र स्वभाव है किन्तु ज्ञान के उदय होने पर माया अदृश्य हो जाती है। माया एक प्रकार का जादू है। जब तक आप मायावी को जान लेते हैं तो आपका आश्चर्य समाप्त हो जाता है और उसके कार्य असत्य हो जाते हैं। आत्म-ज्ञान से माया अदृश्य हो जाती है। जगत् के मोह जाल में बांध रखने वाली माया ही है। माया सत्य को ढक देती है और असत्य को सत्य-सा प्रकट कर देती है। यह दुख को सुख और अनात्मा को आत्मा प्रदर्शित कर देती है, जिस प्रकार अंधेरे में पड़ी रस्सी को भ्रमवश सर्प समझ लेते है, वैसा ही कार्य माया का है।

माया ऐसा शल्य है जो आत्मा को व्रतधारी नहीं बनने देता है क्योंकि वृति का निशल्य होना अनिवार्य है। माया इस लोक में तो अपयश देती है परन्तु परलोक में भी दुर्गति देती है। यदि माया कषाय को नष्ट करना है तो वह ऋजुता और सरलता के भाव अपनाने से ही नष्ट हो सकती है।

'धर्मविसए वि सुहमा, माया होइ अणत्थाय' अर्थात् धर्म के विषय में की हुई सूक्ष्म माया भी अनर्थ का कारण बनती है।

अत: बुद्धिमान पुरुषों को चाहिए कि माया के स्वरूप का भलीभांति अवलोकन कर बाहरी प्रसाधनों में अपनी अमूल्य शक्ति का अपव्यय न करें किन्तु बाहरी प्रसाधनों के लिए समीक्षण का दृष्टि पूर्वक चिंतन करें कि इस चैतन्य देव ने बाहरी प्रसाधनों में कितनी जिंदगियां बिताई हैं। बाहरी प्रसाधन का आनंद वास्तविक नहीं है। जब तक माया का समीक्षण ध्यान नहीं होगा तब तक जीवन की छवि उभर नहीं पायेगी। अत: समताभाव की मूर्च्छा को समताभाव से विलग करने पर यथा समीक्षण दृष्टि से चिंतन कर माया पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

लोभ :– लोभो सव्वविणासणो – अर्थात् लोभ सभी सद्गुणों का नाश कर देता है। **'इच्छालोभिते मुतिग्गस्स पलिमथूं'** अर्थात् लोभ मुक्ति पथ का अवरोधक है।

प्रत्येक भव्य आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है और परमात्म-मार्ग में बढ़ने का प्रयास भी करती है कुछ बाधक तत्व ऐसे हैं जो उसे अपनी क्षमतानुसार आगे बढ़ने नहीं देते। बाधक तत्वों में लोभ कषाय प्रमुख रूप से बाधक है। यह अध:पतन कराने वाला लोभ अग्नि के समान है। अग्नि में ज्यों-ज्यों ईंधन डाला जाता है त्यों-त्यों अग्नि बढ़ती चली जाती है वैसे ही लोभ को शांत करते हैं। जैसे-जैसे जड़ वस्तु का संचय किया जाता है वैसे-वैसे लोभ बढ़ता ही चला जाता है। मनुष्य को यदि चार कोस के लम्बे चौड़े दो कुएं स्वर्ण, हीरे, मोती से भरे हुए भी मिल जाएं तो भी तीसरे कुएं की इच्छा करेगा। उदर को कब्र की मिट्टी के सिवाय कोई भी भरने में समर्थ नहीं है लोभी व्यक्ति धनोपार्जन का कोई तरीका क्यों न हो उसे अपनाने में संकोच नहीं करता है। लोभी मनुष्य माता-पिता, पुत्र, भाई, स्वामी और मित्र के साथ भी विद्रोह कर वैठता है। अदालत में झूठी गवाही देता है, गरीबों की धरोहर दबा लेता है। दुनियां का नीच से नीच कार्य भी कर लेता है। अत: लोभ को पाप के बाप की संज्ञा दी गई है।

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का नाश करता है, माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सभी सद्गुणों का नाश करता है। क्रोध, मान, माया, कषाय तो एक-एक गुण हैं और लोभ सभी पापों की आधारशिला है। आत्मिक-विकास की चाह रखने वाले इस भव, पर भव में सुख के अभिलाषी व्यक्ति को लोभ कषाय से सदैव बचते रहना चाहिए। भगवान महावीर ने ढाई हजार साल पहले जो बातें कही थी वे आज भी प्रासंगिक हैं। गरीब से ज्यादा अमीर के मन में लोभवृति है। गरीब सौ रुपया चाहेगा तो अमीर लाख रुपये के संग्रह का लोभ करेगा। अपनी जरुरत से अधिक चाह करना ही लोभ है।

अत: समीक्षण ध्यान द्वारा लोभ पर नियंत्रण पा सकते हैं। साधक आत्म-शुद्धि हेतु साधना मे तन्मय रहे तो लोभ को भी समीक्षण प्रक्रिया से तितर-बितर करके नष्ट करने लगते हैं।

अत: निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि समीक्षण ध्यान द्वारा अपने जीवन की हर क्रिया का समीक्षण कर कषायों से मुक्त तथा शान्तिपूर्ण जीवन जी सकते हैं। तनावों से मुक्त हो सकते हैं। कषायों का गहराई से समीक्षण ध्यान कर हम बहिर्रात्मा से अन्तरात्मा और अन्तरात्मा से परमात्मा बन सकते हैं।

समस्त प्राणियों को एवं विशेषत: मानव जाति के तनावग्रस्त मस्तिष्क को जब कभी शांति मिलने का प्रसंग आयेगा एवं इस लोक तथा परलोक को भव्य एवं दिव्य बनाने का समय उपलब्ध होगा। तब वह इसी समीक्षण ध्यान एवं समीक्षण दृष्टि के माध्यम से ही आयेगा। यह निर्विवाद और त्रिकालाबाधित सत्य है, ऐसा कहा जाए तो भी अतिशयोक्ति नहीं है।

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org